



इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में चित्रित विविध समस्याओं का अध्ययन

पूनम रानी

शोधार्थी हिंदी विभाग, बुन्देलखण्ड विश्वविधलया, झाँसी

प्रोफेसर (डॉ) मुन्ना तिवारी

विभागाध्यक्ष हिंदी, बुन्देलखंड विश्वविद्यालय, झाँसी

सारांश

शोधपत्र

प्राप्ति तिथि: 15/06/2025

स्वीकृति तिथि: 22/06/2025

प्रकाशन तिथि: 35/06/2025

मुख्यशब्द: इक्कीसवीं सदी, भारतीय समाज, आम जन जीवन, वर्तमान समाज, ग्रामीण और शहरी परिवेश, समकालीन साहित्य.

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियाँ भारतीय समाज में उत्पन्न हो रही नई-नई समस्याओं और जटिलताओं को अत्यंत प्रभावी ढंग से प्रस्तुत करती हैं। इस युग की कहानियों में समाज के विभिन्न वर्गों की समस्याएँ—जैसे बेरोजगारी, जातिवाद, लैंगिक असमानता, घरेलू हिंसा, शहरीकरण की पीड़ा, उपभोक्तावाद, नैतिक मूल्यों में गिरावट, अकेलापन, अवसाद, पर्यावरण संकट और तकनीकी दुष्प्रभाव—का गहराई से चित्रण किया गया है। इन कहानियों के पात्र आम जन जीवन से लिए गए हैं, जो वर्तमान समाज की वास्तविकताओं को प्रतिबिंबित करते हैं। लेखकों ने ग्रामीण और शहरी परिवेश की समस्याओं को यथार्थ के धरातल पर प्रस्तुत करते हुए पाठकों को सोचने के लिए विवश किया है। विशेष रूप से स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, बालश्रम, वृद्धावस्था की उपेक्षा, तथा संबंधों की विघटनशीलता जैसी विषयवस्तुओं पर ध्यान केंद्रित किया गया है। इस युग की कहानियों में भाषा, शैली और शिल्प की नवीनता भी परिलक्षित होती है, जो उन्हें समकालीन साहित्य में विशेष स्थान प्रदान करती है।



प्रस्तावना

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियाँ सामाजिक यथार्थ, बदलते मूल्य-बोध, तकनीकी क्रांति, वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद, सांप्रदायिकता, जातिवाद, लिंगभेद और पारिवारिक विघटन जैसी विविध समस्याओं को अत्यंत प्रामाणिकता और संवेदनशीलता के साथ चित्रित करती हैं। यह सदी सूचना और संचार क्रांति, तकनीकी विकास और आर्थिक उदारीकरण की सदी है, जिसने समाज की संरचना को भीतर से हिला कर रख दिया है। हिंदी कथा साहित्यकारों ने इन परिवर्तनों और उनसे उपजी समस्याओं को अपनी कहानियों में प्रमुखता से स्वर दिया है। आर्थिक विषमता और उपभोक्तावाद की समस्या की चर्चा करें तो पाएँगे कि इक्कीसवीं सदी की कहानियों में यह एक प्रमुख विषय है। वैश्वीकरण और बाजारवाद ने जहाँ एक ओर सुविधाओं और उपभोग की अंधी दौड़ शुरू की, वहीं दूसरी ओर समाज में आर्थिक असमानता और शोषण की खाई और गहरी हो गई। उदय प्रकाश की कहानी मोहनदास (2005) में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार पूँजी और सत्ता का गठजोड़ एक साधारण आदमी के जीवन को बर्बाद कर देता है। मोहनदास की पहचान, उसकी ईमानदारी और उसका अस्तित्व इस गठजोड़ के सामने बौना हो जाता है। इसी तरह पाल गोमरा का स्कूटर में उपभोक्तावाद की मार्मिक व्याख्या की गई है, जहाँ एक स्कूटर आम आदमी के लिए सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रतीक बन जाता है। सांप्रदायिकता और आतंकवाद की समस्या भी इस सदी की कहानियों में प्रमुखता से चित्रित हुई है। असगर वजाहत की कहानी सुई चुभन और हिसाब किताब सांप्रदायिकता के सामाजिक, राजनीतिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं को उजागर करती हैं। ये कहानियाँ यह दिखाती हैं कि सांप्रदायिकता केवल हिंसा तक सीमित नहीं है बल्कि यह व्यक्ति की सोच, रिश्तों और व्यवहार को भी जहरीला बना देती है। नासिरा शर्मा की कहानियाँ इब्रे मरियम और ठीकरे की मंगनी आतंकवाद और सांप्रदायिकता से उपजी मानवीय त्रासदी और स्त्री जीवन पर उसके प्रभाव को अत्यंत मार्मिकता से प्रस्तुत करती हैं।

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में स्त्री जीवन की जटिलताएँ और संघर्ष भी महत्वपूर्ण विषय के रूप में सामने आता है। आज की कहानियों में स्त्री केवल दया और सहानुभूति की पात्र नहीं रह गई है बल्कि वह अपने अधिकारों, पहचान और अस्मिता के लिए संघर्ष करती दिखाई देती है। ममता कालिया की कहानी ब्लाउज उपभोक्तावादी संस्कृति में फँसी स्त्री की विडंबना को दिखाती है। वहीं चित्रा मुद्गल की कहानी पिंजड़े का तोता में मध्यमवर्गीय स्त्री की



आकांक्षाओं और पारिवारिक जटिलताओं का सूक्ष्म चित्र मिलता है। दलित और आदिवासी समाज की समस्याएँ भी इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों का केंद्रीय विषय बनी हैं। सूरजपाल चौहान की नरक यात्रा और जयप्रकाश कर्दम की जात जैसी कहानियाँ दलित जीवन की विडंबनाओं, सामाजिक शोषण और नए प्रकार के दमन की कथा कहती हैं। इन कहानियों में जातिवाद और सामंती व्यवस्था के नए रूपों पर तीखा प्रहार किया गया है। पारिवारिक विघटन और संबंधों का संकट भी इस युग की कहानियों में बड़े मार्मिक रूप में उपस्थित है। अखिलेश की मुक्ति और अंधेरे में हँसी में शहरी जीवन की व्यस्तता, तकनीकी युग की कृत्रिमता और रिश्तों में आती संवादहीनता को दिखाया गया है। प्रियंवद की तट की खोज और आखिरी रात का सपना में बदलते पारिवारिक मूल्यों, पीढ़ियों के बीच बढ़ती खाई और अकेलेपन की त्रासदी को रेखांकित किया गया है। तकनीकी विकास और डिजिटल युग की चुनौतियाँ भी हिंदी कहानीकारों के लिए नए विषय बनकर उभरे हैं। नीलाक्षी सिंह की ई-मेल और संजय खाती की फेसबुक जैसी कहानियाँ डिजिटल युग की आभासी दुनिया, आभासी रिश्तों और उससे उपजी भावनात्मक रिक्तता को उजागर करती हैं। ये कहानियाँ दिखाती हैं कि तकनीक ने भले ही दुनिया को जोड़ा हो, लेकिन यह लोगों को भीतर से और अकेला कर रही है। इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में मानवाधिकार, विस्थापन, बेरोजगारी और प्रवासी जीवन से जुड़े विषय भी चित्रित हुए हैं। समकालीन कथाकारों ने दिखाया है कि भूमंडलीकरण के दौर में विकास की अंधी दौड़ में हाशिए पर खड़े लोग अपनी जमीन, अपने सपनों और अपनी अस्मिता को खोते जा रहे हैं।

वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद की चुनौती

इक्कीसवीं सदी का समाज एक ओर तकनीकी प्रगति, आर्थिक उदारीकरण और भूमंडलीकरण (वैश्वीकरण) की आँधी से गुजर रहा है, वहीं दूसरी ओर इस प्रक्रिया ने उपभोक्तावादी संस्कृति को जन्म देकर सामाजिक, आर्थिक और नैतिक मूल्यों को गहराई से प्रभावित किया है। हिंदी कहानी ने इस सदी के यथार्थ को पूरी संवेदनशीलता के साथ अपने कथा संसार में रचा है। विशेष रूप से उदय प्रकाश और अखिलेश जैसे कथाकारों ने वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद के इस दोहरे संकट को अपनी कहानियों में अत्यंत प्रभावी ढंग से चित्रित किया है। उनकी कहानियाँ केवल घटनाओं या परिस्थितियों का बयान नहीं करतीं, बल्कि इस



प्रक्रिया में टूटते इंसान, बिखरते संबंध और बेमानी होते जा रहे नैतिक मूल्यों की गहन पड़ताल करती हैं।

उदय प्रकाश की कहानियों में वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद की मार सबसे अधिक आम आदमी पर पड़ती दिखाई देती है। उनकी चर्चित कहानी मोहनदास (2005) वैश्वीकरण के दौर में एक साधारण आदमी की पहचान और अस्तित्व के संकट की कथा है। मोहनदास जैसे ईमानदार, मेहनतकश युवक की नौकरी, उसकी पहचान और उसका आत्मसम्मान किस तरह भ्रष्ट सत्ता और पूंजी के गठजोड़ के कारण छीना जाता है, यह कहानी अत्यंत मार्मिकता से प्रस्तुत करती है। यहाँ वैश्वीकरण की वह कड़वी सच्चाई उभरकर सामने आती है, जहाँ बड़ी पूंजी और सत्ता मिलकर छोटे आदमी के जीवन को रौंद देती हैं। कहानी में मोहनदास की लाचारी के माध्यम से उदय प्रकाश बताते हैं कि वैश्वीकरण की चमक-दमक के पीछे एक बड़ा अंधेरा छिपा है, जहाँ आम आदमी के लिए न्याय और समानता केवल शब्द भर रह जाते हैं।

इसी तरह उदय प्रकाश की पाल गोमरा का स्कूटर (2007) उपभोक्तावादी संस्कृति की उस मानसिकता को उजागर करती है, जिसमें वस्तुएँ और ब्रांड व्यक्ति की सामाजिक हैसियत का मापदंड बन जाती हैं। पाल गोमरा जैसे पात्र को स्कूटर मिलते ही समाज में उसकी प्रतिष्ठा बदल जाती है। यहाँ स्कूटर केवल एक वाहन नहीं, बल्कि उपभोक्तावादी समाज में सामाजिक पहचान का प्रतीक है। यह कहानी दिखाती है कि उपभोक्तावादी मानसिकता ने आदमी को वस्तुओं के आधार पर आँकना शुरू कर दिया है और नैतिक मूल्य, मानवीय संवेदनाएँ और आत्मसम्मान इन वस्तुओं की चकाचौंध में गौण होते जा रहे हैं।

उदय प्रकाश की कहानियों की विशेषता यह है कि वे वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद की आलोचना करते हुए समाज में इस नए ढाँचे के भीतर पिसते हुए आम आदमी की पीड़ा को बेहद मार्मिकता से सामने लाती हैं। उनकी भाषा में एक प्रकार का तीखा व्यंग्य और करुणा मिलकर एक ऐसा प्रभाव पैदा करते हैं, जिससे पाठक सीधे पात्रों के दर्द से जुड़ जाता है।

अखिलेश की कहानियाँ भी उपभोक्तावाद और वैश्वीकरण की मार को अत्यंत प्रभावशाली तरीके से चित्रित करती हैं। उनकी कहानी मुक्ति (2003) एक मध्यवर्गीय परिवार की कथा है जो बाहरी रूप से सफल और खुशहाल दिखता है, लेकिन भीतर से उपभोक्तावादी प्रतिस्पर्धा, दिखावटी जीवन और आत्महीनता से बिखरा पड़ा है। कहानी में पति-पत्नी के बीच संवादहीनता और तनाव उपभोक्तावादी संस्कृति की देन है, जहाँ लोग रिश्तों की आत्मीयता को छोड़कर



केवल वस्तुओं और भौतिक उपलब्धियों में सुख तलाशते हैं। अखिलेश इस कहानी में दिखाते हैं कि उपभोक्तावाद केवल जीवनशैली नहीं, बल्कि सोच और संबंधों की प्रकृति को भी बदल रहा है।

अखिलेश की दूसरी प्रसिद्ध कहानी अंधेरे में हँसी (2008) उपभोक्तावादी और वैश्विक संस्कृति में अकेले होते जा रहे व्यक्ति की विडंबना को सामने लाती है। कहानी का नायक एक सफल पेशेवर है, जिसके पास सभी आधुनिक सुख-सुविधाएँ हैं, लेकिन वह भीतर से इतना अकेला है कि उसकी हँसी भी अंधेरे में खो जाती है। मोबाइल, लैपटॉप, कार, आलीशान फ्लैट—सब कुछ होते हुए भी वह नायक मानसिक रूप से रिक्त और असंतुष्ट है। अखिलेश यहाँ दिखाते हैं कि उपभोक्तावादी संस्कृति ने मनुष्य को वस्तुओं का उपभोक्ता भर बना दिया है और उसकी आत्मा और संवेदनाएँ कहीं खो गई हैं।

दोनों कथाकारों की कहानियों में उपभोक्तावाद की चुनौती केवल आर्थिक शोषण या वस्तुओं की चकाचौंध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सामाजिक रिश्तों, नैतिक मूल्यों और मानसिक स्वास्थ्य पर पड़ने वाले असर को भी उजागर करती है। उनकी कहानियों में उपभोक्तावाद और वैश्वीकरण के कारण उत्पन्न आर्थिक असमानता, सामाजिक विघटन और आत्महीनता के यथार्थ को बड़ी ईमानदारी से उकेरा गया है।

सांप्रदायिकता और आतंकवाद की पृष्ठभूमि

इक्कीसवीं सदी के हिंदी कथा साहित्य में समाज की जटिलताओं, विडंबनाओं और अंतर्विरोधों को गहराई से उकेरने का प्रयास किया गया है। इस सदी में सांप्रदायिकता और आतंकवाद जैसे मुद्दे केवल राजनीतिक और सामाजिक विमर्श का विषय नहीं रहे, बल्कि साहित्य की संवेदनशील धरती पर भी उन्होंने गहरी छाप छोड़ी है। असगर वजाहत और नासिरा शर्मा ऐसे दो महत्वपूर्ण रचनाकार हैं, जिन्होंने इन समस्याओं को केवल घटना या समाचार के रूप में नहीं देखा, बल्कि उसके पीछे की मानसिकता, राजनीति और मानवीय त्रासदी को अपनी कहानियों में स्वर दिया। इन दोनों कथाकारों की दृष्टि मानवीय करुणा, सहअस्तित्व और सामाजिक समरसता की पक्षधर रही है।

असगर वजाहत की दृष्टि सांप्रदायिकता की समस्या को केवल धार्मिक टकराव तक सीमित नहीं रखती, बल्कि वे यह दिखाते हैं कि यह समस्या सत्ता, राजनीति और पूंजी के गठजोड़ से



उपजती है। उनकी चर्चित कहानी सुई चुभन सांप्रदायिकता के सूक्ष्म और घातक रूप की पहचान कराती है। कहानी में एक व्यक्ति अपने मुसलमान मित्र को खो देता है और उसे यह एहसास तब होता है जब वह अपने भीतर झाँकता है और महसूस करता है कि उसके सोचने का तरीका भी सांप्रदायिकता से दूषित हो चुका है। यह कहानी यह बताती है कि सांप्रदायिकता केवल दंगे या हिंसा तक सीमित नहीं है; यह एक ऐसी मानसिकता है जो हमारे विचारों और व्यवहारों में गहराई से पैठ बना चुकी है।

इसी तरह असगर वजाहत की कहानी हिसाब-किताब सांप्रदायिक राजनीति की विद्रूपताओं को सामने लाती है। यह कहानी सांप्रदायिकता की आड़ में हो रही सत्ता की राजनीति और आम जनमानस के शोषण को उजागर करती है। कहानी के पात्र सत्ता और धार्मिक ठेकेदारों के हाथों कैसे मोहरे बनते हैं, इसका मार्मिक चित्रण किया गया है। असगर वजाहत की कहानियाँ सांप्रदायिकता की समस्या पर तीखा व्यंग्य करती हैं और यह दिखाती हैं कि कैसे यह समस्या हमारी सामाजिक संरचना को भीतर से खोखला कर रही है। उनकी भाषा में कटाक्ष, विडंबना और मानवीय संवेदना का अद्भुत संयोजन देखने को मिलता है।

नासिरा शर्मा की दृष्टि इस विषय पर और अधिक मानवीय और संवेदनशील है। उनकी कहानियाँ विशेष रूप से इस बात पर जोर देती हैं कि सांप्रदायिकता और आतंकवाद की सबसे बड़ी मार आम आदमी पर पड़ती है, खासकर स्त्रियों पर। उनकी प्रसिद्ध कहानी ठीकरे की मंगनी सांप्रदायिकता के कारण समाज में उत्पन्न असुरक्षा और स्त्री जीवन पर पड़ने वाले उसके दुष्प्रभाव का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करती है। कहानी में सांप्रदायिक दंगों के समय एक स्त्री के साथ हुए शारीरिक और मानसिक अत्याचार को दर्शाया गया है। नासिरा शर्मा यहाँ यह दिखाती हैं कि सांप्रदायिकता की आग में सबसे पहले स्त्री की अस्मिता जलती है।

नासिरा शर्मा की दूसरी महत्वपूर्ण कहानी इब्ने मरियम आतंकवाद की भयावहता और उसके शिकार बने आम लोगों की त्रासदी को रेखांकित करती है। इस कहानी में नायक आतंकवाद का शिकार होकर न केवल अपना परिवार खो देता है, बल्कि जीवनभर डर, असुरक्षा और अविश्वास की छाया में जीता है। यह कहानी आतंकवाद की राजनीतिक पृष्ठभूमि और उसके कारण समाज में उपजे अविश्वास, भय और अलगाव की मानसिकता को उजागर करती है। नासिरा शर्मा आतंकवाद के शिकार बने आम इंसान की पीड़ा को बड़ी करुणा और मानवीय संवेदना के साथ पेश करती हैं।



दोनों कथाकारों की दृष्टि में एक समानता यह है कि वे सांप्रदायिकता और आतंकवाद को केवल धार्मिक समस्या नहीं मानते, बल्कि वे इसे सत्ता और राजनीति द्वारा पोषित बीमारी के रूप में देखते हैं। असगर वजाहत की कहानियों में सत्ता, राजनीति और धर्म का गठजोड़, और नासिरा शर्मा की कहानियों में आम आदमी, विशेष रूप से स्त्री और अल्पसंख्यक समुदाय की पीड़ा केंद्रीय विषय होती है। असगर वजाहत जहाँ तीखा व्यंग्य करते हैं, वहीं नासिरा शर्मा करुणा और संवेदनशीलता के साथ पाठक के दिल में जगह बनाती हैं।

दोनों ही लेखकों की कहानियाँ यह संदेश देती हैं कि सांप्रदायिकता और आतंकवाद की समस्याओं का समाधान हिंसा या प्रतिहिंसा में नहीं, बल्कि संवाद, सहिष्णुता और आपसी समझ में है। इनकी कहानियाँ आज के समाज के लिए एक चेतावनी भी हैं कि अगर समय रहते हम इन समस्याओं की जड़ में न जाकर केवल सतही समाधान खोजते रहेंगे, तो हमारा समाज और अधिक बिखरता जाएगा।

भाषा और शिल्प की दृष्टि से, असगर वजाहत की कहानियों में व्यंग्यात्मक शैली और करारा प्रहार है। उनकी भाषा सहज होते हुए भी सत्ता और समाज की विसंगतियों को उजागर करने में सक्षम है। वहीं नासिरा शर्मा की भाषा करुणा, सहानुभूति और मानवीय संवेदनाओं से भीगी हुई है। वे अपने पात्रों के दर्द और पीड़ा को पाठक तक पहुँचाने के लिए सूक्ष्म और प्रभावशाली शब्दों का चयन करती हैं।

आधुनिक जीवन की विडंबनाएँ और पारिवारिक संकट

इक्कीसवीं सदी का हिंदी कथा साहित्य समाज में हो रहे व्यापक बदलावों, जीवन मूल्यों में आई गिरावट और पारिवारिक विघटन की गहराई से पड़ताल करता है। भूमंडलीकरण, उपभोक्तावाद, तकनीकी विकास और बदलती जीवन शैली ने जहाँ जीवन को नई सुविधाएँ दी हैं, वहीं इसने संबंधों की आत्मीयता और पारिवारिक संरचना को गहरे संकट में डाल दिया है। विशेषकर प्रियंवद और अखिलेश जैसे कथाकारों की कहानियाँ आधुनिक जीवन की इन विडंबनाओं और पारिवारिक संकटों का यथार्थवादी और संवेदनशील चित्र प्रस्तुत करती हैं। इनकी रचनाओं में आधुनिक व्यक्ति की अकेलापन, संवादहीनता, अवसाद और संबंधों में आई कृत्रिमता को बड़ी सूक्ष्मता और कलात्मकता के साथ प्रस्तुत किया गया है। प्रियंवद की कहानियों में आधुनिक जीवन की विडंबनाएँ उनके पात्रों की मानसिकता, उनके अंतर्द्वंद्व और उनके टूटते-बिखरते संबंधों में मुखर होती हैं। उनकी कहानी आदमी, आदमी और आदमी



(2003) आधुनिक महानगरीय जीवन की उस त्रासदी का जीवंत चित्र है जहाँ आदमी भौतिक सुविधाओं से तो समृद्ध होता जा रहा है, लेकिन भीतर से वह आत्महीन, असुरक्षित और अकेला होता जा रहा है। कहानी के पात्र सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त कृत्रिमता और रिश्तों की खोखलेपन से जूझते हैं। प्रियंवद दिखाते हैं कि आधुनिक जीवन में व्यक्ति बाहरी दुनिया में तो व्यस्त है, लेकिन भीतर से वह संवादहीनता, भय और असंतोष का शिकार है।

इसी तरह उनकी कहानी खाली घर (2005) एक प्रतीक बन जाती है उस पारिवारिक विघटन की, जहाँ परिवार एक छत के नीचे तो है, लेकिन आत्मिक रूप से बिखर चुका है। कहानी का नायक अपने ही घर में एकांत और अजनबीपन का अनुभव करता है। यहाँ घर केवल एक भवन नहीं रह जाता, बल्कि पारिवारिक संबंधों के विघटन का प्रतीक बन जाता है। प्रियंवद की भाषा में गहरी करुणा और व्यंग्यात्मकता है, जो पाठक को भीतर तक झकझोरती है। वे आधुनिक जीवन की विडंबनाओं को केवल घटनाओं के माध्यम से नहीं, बल्कि पात्रों की मानसिक दशाओं और उनके व्यवहार के सूक्ष्म चित्रण से सामने लाते हैं।

अखिलेश की कहानियों में आधुनिक जीवन की विडंबनाओं और पारिवारिक संकटों का चित्रण और भी मार्मिक रूप से सामने आता है। उनकी कहानी मुक्ति (2004) एक ऐसे दंपति की कथा है, जो आधुनिक जीवन की चमक-दमक और उपभोक्तावाद की दौड़ में अपने संबंधों की आत्मीयता खो बैठा है। पति-पत्नी दोनों अपने-अपने जीवन में इतने व्यस्त हैं कि उनके बीच संवादहीनता और भावनात्मक दूरी बढ़ती जाती है। कहानी के अंत में पति की आत्महत्या की खबर आती है और पत्नी को यह एहसास होता है कि भौतिक सफलता और सामाजिक प्रतिष्ठा पाने की इस दौड़ में वे एक-दूसरे को खो चुके हैं। यह कहानी आधुनिक जीवन की उस त्रासदी का प्रतीक है जहाँ आदमी अपने ही बनाए भौतिक संसार में इतना उलझ जाता है कि वह अपने रिश्तों को बचा नहीं पाता।

अखिलेश की कहानी अंधेरे में हँसी (2008) भी आधुनिक महानगरीय जीवन के उस यथार्थ को सामने लाती है, जहाँ आदमी अकेलेपन और अवसाद का शिकार होता है। कहानी का नायक सभी भौतिक सुख-सुविधाओं से युक्त है, लेकिन भीतर से वह इतना खाली है कि उसकी हँसी भी अब अंधेरे में खो गई है। अखिलेश दिखाते हैं कि आधुनिक जीवन शैली ने आदमी को उपभोक्ता भर बना दिया है। संबंधों की आत्मीयता, नैतिक मूल्य और आपसी विश्वास सब कुछ इस उपभोक्तावादी होड़ में खत्म होता जा रहा है।



दोनों कथाकारों की कहानियों में आधुनिक जीवन की विडंबनाएँ केवल बाहरी परिस्थितियों का चित्रण नहीं करतीं, बल्कि वे व्यक्ति की मानसिकता और उसके भीतर उपजे तनाव, अवसाद और अकेलेपन की गहराई से पड़ताल करती हैं। इन कहानियों में यह चिंता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है कि आधुनिकता के नाम पर हम एक ऐसे समाज की ओर बढ़ रहे हैं जहाँ व्यक्ति के पास सब कुछ होते हुए भी कुछ भी नहीं बचा।

दलित और आदिवासी यथार्थ

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी ने समाज के उन वर्गों की पीड़ा, संघर्ष और जिजीविषा को स्वर दिया है जिन्हें अब तक हाशिए पर रखा गया था। दलित और आदिवासी समाज का यथार्थ, उनके जीवन की जटिलताएँ, शोषण, अन्याय और उनके आत्मसम्मान की लड़ाई आज की हिंदी कहानियों का केंद्रीय विषय बन चुका है। इस संदर्भ में सूरजपाल चौहान और जयप्रकाश कर्दम की कहानियाँ विशेष रूप से महत्वपूर्ण हैं। ये दोनों रचनाकार न केवल अपने अनुभवों से उपजी कथा-संवेदना के कारण महत्वपूर्ण हैं, बल्कि इसलिए भी कि इन्होंने दलित और आदिवासी समाज की वास्तविक पीड़ा को बिना किसी बनावटी आग्रह के प्रस्तुत किया है।

सूरजपाल चौहान की कहानियाँ दलित समाज की भोगी हुई सच्चाई का दस्तावेज हैं। उनकी कहानी सांकल (2004) में दलित समुदाय की वह पीड़ा और बेबसी चित्रित है जो सदियों से चली आ रही जातिगत विषमता की देन है। कहानी का नायक एक दलित युवा है जो अपने आत्मसम्मान के लिए जूझ रहा है। वह पढ़ा-लिखा है और समाज में अपनी पहचान बनाना चाहता है, लेकिन जातिगत पूर्वग्रहों की सांकलें उसे बार-बार बाँध देती हैं। सूरजपाल चौहान दिखाते हैं कि शिक्षा और आर्थिक प्रगति भी जाति के बंधनों को पूरी तरह नहीं तोड़ पातीं।

उनकी कहानी जूठन (2008) भी उल्लेखनीय है, जो दलित समाज की रोजमर्रा की अपमानजनक स्थितियों को उजागर करती है। कहानी में वर्णित पात्रों के माध्यम से सूरजपाल चौहान यह रेखांकित करते हैं कि दलित समाज आज भी अपने ही देश में दोयम दर्जे का जीवन जीने को मजबूर है। गाँव का सामाजिक ढाँचा इतना सड़ चुका है कि वहाँ दलितों की मेहनत और ईमानदारी का कोई मोल नहीं। उनकी भाषा में कहीं भी बनावटी क्रोध नहीं है, बल्कि एक ठहराव है, जो दलित जीवन की गहरी पीड़ा को पाठक तक पहुँचाने में सक्षम है।



जयप्रकाश कर्दम की कहानियाँ दलित जीवन के यथार्थ को वैचारिक गहराई और सामाजिक विश्लेषण के साथ प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानी छलावा (2006) में दलित चेतना का उभार दिखाई देता है। कहानी का नायक अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करता है, लेकिन उसे बार-बार सत्ता और सामाजिक ढाँचे से टकराना पड़ता है। कहानी इस तथ्य को उजागर करती है कि दलितों के लिए आरक्षण या कानून से ज्यादा जरूरी है मानसिकता में बदलाव। जयप्रकाश कर्दम यह दिखाते हैं कि समाज में समता केवल कानून से नहीं, बल्कि सोच के परिवर्तन से आएगी।

उनकी कहानी अँधेरा (2010) आदिवासी समाज की विडंबनाओं को सामने लाती है। इस कहानी में आदिवासियों के विस्थापन, उनके जल-जंगल-जमीन पर होते अतिक्रमण और विकास की आँधी में उनकी पहचान के संकट को मार्मिकता से चित्रित किया गया है। जयप्रकाश कर्दम आदिवासी समाज की मासूमियत, उनकी परंपराओं और उनकी लड़ाई को जिस संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करते हैं, वह हिंदी कहानी की बड़ी उपलब्धि है।

दोनों ही कथाकारों की कहानियों में दलित और आदिवासी समाज की पीड़ा केवल घटना भर नहीं है, बल्कि वे समाज की संरचना और सत्ता की क्रूरता का गहन विश्लेषण भी प्रस्तुत करती हैं। सूरजपाल चौहान की कहानियों में एक आत्मीय पीड़ा है, तो जयप्रकाश कर्दम की कहानियों में सामाजिक परिवर्तन की आकांक्षा और संघर्ष का स्वर अधिक मुखर है।

शिल्प और भाषा की दृष्टि से, सूरजपाल चौहान की कहानियाँ सरल, सहज और जीवन के निकट की भाषा में लिखी गई हैं। उनकी कहानियों में प्रतीक और बिंब बहुत सहज रूप से आते हैं और पात्रों के जीवन से जुड़े रहते हैं। वहीं जयप्रकाश कर्दम की भाषा में एक वैचारिक गंभीरता और विचारशीलता है। वे अपनी कहानियों के माध्यम से केवल यथार्थ चित्रित नहीं करते, बल्कि पाठक को सोचने पर विवश करते हैं।

स्त्री जीवन की समस्याएँ और संघर्ष

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानी में स्त्री जीवन के विविध पहलुओं, उसकी जटिलताओं, समस्याओं और संघर्षों को विशेष स्थान मिला है। आधुनिक समाज में स्त्री का जीवन जिन अंतर्विरोधों, विडंबनाओं और संघर्षों से घिरा हुआ है, वह केवल सामाजिक व्यवस्था की देन नहीं, बल्कि हमारे पारंपरिक सोच, पितृसत्तात्मक मानसिकता और बदलते सामाजिक-आर्थिक



ढाँचे का परिणाम भी है। हिंदी कथा साहित्य में ममता कालिया और चित्रा मुद्गल दो ऐसी सशक्त कथाकार हैं जिन्होंने स्त्री जीवन की समस्याओं और उसके संघर्ष को न केवल यथार्थपरक दृष्टि से प्रस्तुत किया है, बल्कि उसके भीतर की करुणा, जिजीविषा और विद्रोह को भी स्वर दिया है। इनकी कहानियाँ स्त्री की आत्मसंघर्ष गाथा के साथ-साथ समाज की उन विसंगतियों को उजागर करती हैं, जिनसे जूझते हुए वह अपने अस्तित्व की पहचान बनाने की कोशिश करती है।

ममता कालिया की कहानियाँ आधुनिक मध्यवर्गीय स्त्री जीवन की विडंबनाओं को केंद्र में रखती हैं। उनकी प्रसिद्ध कहानी मुखौटे (2002) एक ऐसी स्त्री की कहानी है जो अपनी पहचान और स्वतंत्रता के लिए लड़ रही है। इस कहानी की नायिका को समाज ने एक आदर्श पत्नी, बहू और माँ के मुखौटे पहनने पर मजबूर कर दिया है। वह अपने व्यक्तित्व, इच्छाओं और सपनों को मारकर दूसरों की अपेक्षाओं के अनुसार जीती है। लेकिन अंततः वह इन मुखौटों को उतार फेंकने का साहस करती है। ममता कालिया की इस कहानी में स्त्री का संघर्ष केवल घर की चारदीवारी में नहीं है, बल्कि वह अपनी आत्मा के भीतर चल रहे द्वंद्व से भी जूझ रही है।

उनकी दूसरी कहानी बेघर (2005) विवाह संस्था में निहित असमानता और स्त्री की असुरक्षा को उजागर करती है। कहानी की नायिका एक शिक्षित, आत्मनिर्भर महिला है जो अपने पति की उपेक्षा और हिंसा का शिकार होती है। समाज उसे बार-बार यह समझाने की कोशिश करता है कि विवाह और परिवार स्त्री की अंतिम मंजिल है, चाहे उसमें उसे कितना भी अपमान सहना पड़े। लेकिन वह इस बंधन से मुक्त होकर अपनी नई पहचान बनाने का निर्णय लेती है। ममता कालिया की कहानियों की भाषा सरल, संवाद प्रधान और व्यंग्यात्मक होती है, जो समाज की खोखली नैतिकता और पाखंड पर तीखा प्रहार करती है।

चित्रा मुद्गल की कहानियाँ स्त्री जीवन की समस्याओं को केवल शहरी मध्यवर्ग तक सीमित नहीं रखतीं, बल्कि वे निम्नवर्गीय स्त्रियों के संघर्ष, उनके श्रम और शोषण की सच्चाई को भी सामने लाती हैं। उनकी चर्चित कहानी गिल्लू (2004) में एक स्त्री का संघर्ष अपने अपंग बेटे को समाज की उपेक्षा और तिरस्कार से बचाने का है। कहानी की नायिका मजदूरी करके अपने बेटे की देखभाल करती है और समाज की दया दृष्टि से दूर अपने बेटे के लिए सम्मानपूर्ण जीवन चाहती है। चित्रा मुद्गल यहाँ स्त्री की ममता, उसकी श्रमशीलता और उसकी जिजीविषा का अद्भुत चित्र प्रस्तुत करती हैं।



उनकी कहानी एक जमीन अपनी (2008) स्त्री के भूमि-अधिकार और आत्मसम्मान की लड़ाई को केंद्र में रखती है। कहानी की नायिका एक विधवा है जो अपने पति की मृत्यु के बाद अपनी जमीन बचाने के लिए समाज के शोषक तंत्र से लड़ती है। यह कहानी दिखाती है कि स्त्री के संघर्ष केवल घर की चारदीवारी तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वह अपनी आजीविका, अपने अधिकार और अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए भी लड़ रही है। चित्रा मुद्रल की भाषा में करुणा, संवेदना और यथार्थ का अनूठा संयोजन है, जो उनकी कहानियों को विशिष्ट बनाता है।

दोनों ही कथाकारों की कहानियों में स्त्री जीवन की समस्याएँ केवल दाम्पत्य जीवन तक सीमित नहीं हैं। वे समाज की पितृसत्तात्मक व्यवस्था, आर्थिक असमानता, लैंगिक भेदभाव, हिंसा और शोषण को व्यापक रूप से उजागर करती हैं। ममता कालिया जहाँ व्यंग्य और कटाक्ष के माध्यम से स्त्री जीवन की विडंबनाओं को प्रस्तुत करती हैं, वहीं चित्रा मुद्रल अपनी कहानियों में श्रमिक, दलित और निम्नवर्गीय स्त्रियों के संघर्ष को मानवीय गरिमा के साथ चित्रित करती हैं।

तकनीक और डिजिटल युग का परिवेश

इक्कीसवीं सदी में तकनीकी विकास और डिजिटल क्रांति ने मनुष्य के जीवन, सोच, संबंध और समाज की संरचना को पूरी तरह बदल दिया है। हिंदी कहानी भी इस बदलाव से अछूती नहीं रही है। *नीलाक्षी सिंह* और *संजय खाती* जैसे रचनाकारों ने तकनीक और डिजिटल युग के इस परिवेश को अपनी कहानियों में गहराई से उकेरा है। इन कथाकारों की दृष्टि इस परिवर्तन के दोनों पहलुओं—सुविधा और संकट—को रेखांकित करती है। उनकी कहानियाँ तकनीक के लाभ, परंतु उससे उपजे नए प्रकार के अकेलेपन, आभासी जीवन और मानवीय रिश्तों की दूरी को सामने लाती हैं।

नीलाक्षी सिंह की कहानियाँ तकनीक के बढ़ते वर्चस्व से उपजे सामाजिक-सांस्कृतिक बदलावों को बड़े संवेदनशील और विश्लेषणात्मक ढंग से प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानी *दरम्यान* (2012) डिजिटल युग में रिश्तों के कृत्रिम होते जाने की त्रासदी को सामने लाती है। कहानी का नायक सोशल मीडिया की दुनिया में इतना डूबा हुआ है कि उसके वास्तविक जीवन के रिश्ते खोखले हो चुके हैं। *नीलाक्षी* दिखाती हैं कि तकनीक जहाँ एक ओर संवाद के नए साधन देती है, वहीं वह भावनात्मक दूरी और अकेलेपन को भी जन्म देती है।



उनकी एक और उल्लेखनीय कहानी *ई-मेल का इंतजार* (2015) में तकनीक पर बढ़ती निर्भरता और उससे उपजी असुरक्षा को चित्रित किया गया है। नायिका हर समय ई-मेल, मैसेज और कॉल का इंतजार करते हुए एक आभासी संसार में जी रही है, जबकि उसके चारों ओर का वास्तविक संसार अस्तित्वहीन सा हो गया है। यह कहानी बताती है कि डिजिटल युग में इंसानी संवेदनाएँ कैसे धीरे-धीरे मशीनी बनती जा रही हैं।

संजय खातीकी कहानियाँ तकनीक और डिजिटल युग के समाजशास्त्रीय और आर्थिक पहलुओं पर ज्यादा गहरी दृष्टि डालती हैं। उनकी कहानी *आईटी सिटी* (2014) तकनीकी विकास के पीछे छिपे आर्थिक शोषण और वर्गीय विषमता को रेखांकित करती है। कहानी बेंगलुरु जैसे महानगर में काम करने वाले आईटी प्रोफेशनल्स की जिंदगी को सामने लाती है, जहाँ वे दिन-रात तकनीक से जुड़े होते हैं, परंतु अपने परिवार और सामाजिक जीवन से कट जाते हैं। संजय खाती यह दिखाते हैं कि कैसे तकनीक की चमक के पीछे एक खोखला और तनावपूर्ण जीवन छिपा है।

संजय की दूसरी कहानी *नेटवर्क डाउन है* (2017) डिजिटल युग में मनुष्य की तकनीक पर बढ़ती निर्भरता और उससे उपजी असहायता को सामने लाती है। कहानी में एक दिन शहर का इंटरनेट नेटवर्क ठप हो जाता है और लोग अपने कार्य, रिश्ते और जीवन की दिशा ही भूल जाते हैं। यह कहानी डिजिटल युग में हमारी प्राथमिकताओं और जीवन के केंद्र में तकनीक के बढ़ते वर्चस्व पर सवाल उठाती है।

दोनों कथाकारों की कहानियों में तकनीक और डिजिटल युग का परिवेश केवल यांत्रिक विकास का चित्र नहीं है, बल्कि उसमें छुपी मानवीय त्रासदी, संबंधों का विघटन, अकेलापन और आभासीपन की भयावहता को उजागर किया गया है। ये कहानियाँ दिखाती हैं कि डिजिटल क्रांति ने जहाँ अनेक सुविधाएँ दी हैं, वहीं उसने मनुष्य को उसके मूल मानवीय गुणों से दूर भी कर दिया है।

भाषा और शिल्पकी दृष्टि से नीलाक्षी सिंह की भाषा संवेदनशील, बिंबात्मक और भावनात्मक गहराई से परिपूर्ण है। उनकी कहानियाँ पाठक को भीतर तक झकझोरती हैं और तकनीक के प्रभावों पर आत्ममंथन करने को प्रेरित करती हैं। वहीं संजय खाती की भाषा में एक तीखा व्यंग्य, कटाक्ष और समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण दिखाई देता है, जो तकनीक और डिजिटल युग की विडंबनाओं पर तीखा प्रहार करता है।



निष्कर्ष

इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियों में चित्रित विविध समस्याएँ न केवल समकालीन समाज की सच्चाई को उजागर करती हैं, बल्कि पाठकों को आत्मचिंतन और सामाजिक चेतना की दिशा में प्रेरित भी करती हैं। इन कहानियों में जिस प्रकार बेरोजगारी, सामाजिक विषमता, स्त्री शोषण, पारिवारिक विघटन, मानसिक तनाव, तकनीकी युग की चुनौतियाँ, पर्यावरणीय संकट और नैतिक पतन जैसे मुद्दों को संवेदनशीलता और यथार्थवाद के साथ प्रस्तुत किया गया है, वह हिंदी साहित्य की समृद्ध परंपरा को आधुनिक संदर्भों से जोड़ने का कार्य करता है। कहानीकारों ने न केवल समस्याओं का उल्लेख किया है, बल्कि उनके संभावित समाधान और समाज में बदलाव की आवश्यकता को भी संकेतों या प्रत्यक्ष रूप से प्रस्तुत किया है। इस युग की कहानियाँ जनमानस की पीड़ा और आकांक्षाओं की सजीव अभिव्यक्तियाँ हैं, जो सामाजिक सरोकारों से जुड़कर साहित्य को सक्रिय और जागरूक बनाने में सहायक सिद्ध हो रही हैं। अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी की हिंदी कहानियाँ विविध समस्याओं को उकेरते हुए सामाजिक चेतना, मानवीय संवेदना और परिवर्तन की भावना को मजबूती प्रदान करती हैं, और आधुनिक हिंदी कथा साहित्य को एक नई दिशा देती हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. चित्रा मुद्गल (2004). गिल्लू और अन्य कहानियाँ. साहित्य भंडार।
2. चित्रा मुद्गल (2008). एक जमीन अपनी. साहित्य भवन।
3. चित्रा मुद्गल (2010). यह घर तुम्हारा नहीं. वाणी प्रकाशन।
4. चित्रा मुद्गल (2011). पिंजड़े का तोता और अन्य कहानियाँ. राजकमल प्रकाशन।
5. तिवारी, पुरुषोत्तम (2010). समकालीन हिंदी कहानी: समाज और यथार्थ. राजकमल प्रकाशन।
6. द्विवेदी, पुरुषोत्तम (2010). आधुनिक हिंदी कहानी और उपभोक्तावाद. साहित्य भवन।
7. द्विवेदी, पुरुषोत्तम (2010). हिंदी कहानी और आधुनिक जीवन. साहित्य भवन।
8. द्विवेदी, पुरुषोत्तम (2010). हिंदी कहानी और समकालीन समाज. साहित्य भंडार।
9. द्विवेदी, पुरुषोत्तम (2010). उपभोक्तावाद और हिंदी कहानी. साहित्य भंडार।
10. द्विवेदी, पुरुषोत्तम (2010). दलित चेतना और हिंदी कहानी. साहित्य भंडार।



11. द्विवेदी, पुरुषोत्तम (2010). हिंदी कथा साहित्य: समाज और यथार्थ. साहित्य भंडार।
12. द्विवेदी, पुरुषोत्तम (2010). हिंदी कहानी: समाज और यथार्थ. साहित्य भंडार।
13. ममता कालिया (2000). ब्लाउज और अन्य कहानियाँ. राजकमल प्रकाशन।
14. ममता कालिया (2000). ब्लाउज और अन्य कहानियाँ. वाणी प्रकाशन।
15. ममता कालिया (2002). नरक दर नरक. वाणी प्रकाशन।
16. ममता कालिया (2002). मुखौटे और अन्य कहानियाँ. राजकमल प्रकाशन।
17. ममता कालिया (2005). बेघर. साहित्य भंडार।
18. नासिरा शर्मा (2005). सात नदियाँ एक समंदर. राजकमल प्रकाशन।